2 सितम्बर 2010, कुल पृष्ठ : 8, मूल्य : 2/- आर. एन. आई. 31109/77 RJ / J. P. C / FN-61 / 2009-11

जैन
पथप्रदर्शक

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के व्याख्यान देखिये

जी-जागरण पर

प्रतिदिन प्रातः 6.40 से 7.00 बजे तक

वर्ष : 33, अंक : 11 सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** आजीवन शुल्क : 251 रुपये

सितम्बर (प्रथम), 2010 सह-सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा** वार्षिक शुल्क : 25 रुपये

साप्ताहिक गोष्ठियाँ एवं वाद-विवाद प्रतियोगिता संपन्न

1. जयपुर (राज.) : यहाँ श्री टोडरमल दि.जैन सिद्धांत महाविद्यालय द्वारा आयोजित साप्ताहिक गोष्ठियों की शृंखला में दिनाँक 14 अगस्त को **गाथा गुरुओं की** विषय पर गोष्ठी का आयोजन किया गया।

गोष्ठी की अध्यक्षता श्री रमेशचंदजी तिजारिया ने की। मुख्य अतिथि के रूप में श्री ताराचंदजी सौगाणी मंचासीन थे।

श्रेष्ठ वक्ता के रूप में शास्त्री वर्ग से सनत जैन (प्रथम वर्ष) एवं उपाध्याय वर्ग से ईर्या जैन (प्राक् शास्त्री द्वितीय वर्ष) को पुरस्कृत किया गया।

अन्त में पण्डित शांतिकुमारजी पाटील ने अध्यक्ष महोदय का आभार प्रदर्शन किया। गोष्ठी का संचालन शास्त्री तृतीय वर्ष से आशीष मड़ावरा एवं मोहित नौगांव ने किया।

2. दिनाँक 22 अगस्त को **जैन सिद्धांतों की वर्तमान में उपयोगिता है या नहीं** विषय पर वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता डॉ0 पी. सी.जैन (विभागाध्यक्ष जैन अनुशीलन केन्द्र - राजस्थान विश्वविद्यालय) ने की।

श्रेष्ठ वक्ता के रूप में विकास जैन तृतीय वर्ष एवं अभिषेक जैन प्रथम वर्ष ने स्थान प्राप्त किया।

अन्त में पण्डित सोनूजी शास्त्री ने अध्यक्ष महोदय का आभार प्रदर्शन किया। गोष्ठी का संचालन अनेकान्त जैन एवं पंकज संघई अन्तिम वर्ष ने किया।

3. दिनाँक 29 अगस्त को **दशलक्षण महापर्व : एक अनुशीलन** विषय पर गोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी की अध्यक्षता टोडरमल सिद्धान्त महाविद्यालय के स्नातक पण्डित संजयकुमारजी सेठी जयपुर ने की। मुख्य अतिथि के रूप में श्री स्वदेशभूषणजी (निदेशक : पंजाब केसरी - दैनिक समाचार पत्र) एवं विशिष्ट अतिथि के रूप में श्री बालचंदजी पाटनी (अध्यक्ष - मुमुक्षु मण्डल कोलकाता) तथा श्री अखिलजी बंसल मंचासीन थे।

श्रेष्ठ वक्ता के रूप में उपाध्याय वर्ग से नीशू जैन प्राक्शास्त्री द्वितीय वर्ष एवं शास्त्री वर्ग से आकाश जैन शास्त्री द्वितीय वर्ष ने प्रथम स्थान प्राप्त किया।

अतिथियों का माल्यार्पण द्वारा स्वागत पण्डित सोनूजी शास्त्री ने किया एवं आभार प्रदर्शन पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील ने किया।

संपूर्ण कार्यक्रम ऋषिकेश जैन के संचालन एवं जयेश जैन, वीरेन्द्र जैन व भावेश जैन शास्त्री तृतीय वर्ष के संयोजकत्व में संपन्न हुये।

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन के तत्त्वावधान में ह्न

मालवा व निमाड प्रान्त के तीर्थों की यात्रा हेतु बुकिंग प्रारंभ

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन के तत्त्वावधान में **दिनांक 25 दिसम्बर 2010 से 31 दिसम्बर 2010** तक मालवा व निमाड प्रान्त के तीर्थक्षेत्रों की यात्रा का आयोजन राष्ट्रीयस्तर पर किया जा रहा है। यात्रा दिनांक 25 दिसम्बर को इन्दौर से प्रारंभ होगी। बावनगजा में 31 दिसम्बर को रात्रि 9.00 बजे यात्रा का समापन होगा। सभी यात्रियों को 1 जनवरी को 12 बजे तक इन्दौर पहुंचा दिया जायेगा।

इस दौरान गोम्मटगिरि, इन्दौर, मक्सी, पुष्पगिरि, महावीर तपोभूमि उज्जैन, नेमावर, गंधर्वगिरी, कागदीपुरा, मांडव, मानतुंगगिरि, सिद्धवरकूट, णमोकारधाम एवं पोदनपुर सनावद, ऊन, पार्श्वगिरि, बावनगजा आदि क्षेत्रों की यात्रा का लाभ मिलेगा। इस यात्रा में अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान डॉ.हुकमचन्द भारिल्ल, पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल आदि अनेक विद्वानों के प्रवचनों का लाभ प्राप्त होगा।

फार्म जमा कराने की अन्तिम तिथि 31 अक्टूबर, 2010 है; परन्तु सीटों की बुकिंग पहले आओ पहले पाओ के आधार से होगी। हमारी सीटें फुल हो जाने के बाद प्राप्त होने वाले फार्म स्वीकार नहीं किये जाएंगे। यात्रा हेतु कुल राशि 5600/- रुपये प्रति व्यक्ति रखी गई है, जिसे फार्म के साथ अग्रिम कैश या ड्राफ्ट के रूप में **अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन जयपुर** के नाम पर भेजने पर ही बुकिंग सुनिश्चित होगी। महाविद्यालय के पूर्व छात्रों (पत्नी सहित)को 1000/- की छूट दी जाएगी।

छह वर्ष तक के बच्चों की यात्रा नि:शुल्क रहेगी; परन्तु उसे अलग से सीट देना संभव नहीं होगा। 70 वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों को यात्रा में ले जाना संभव नहीं है।

यदि किसी कारणवश आप अपनी बुकिंग 10 दिसम्बर तक कैन्सिल कराते हैं तो 1500/- रुपये काटकर राशि वापिस की जायेगी। इसके उपरान्त बुकिंग कैन्सिल कराने पर कोई राशि वापिस नहीं की जा सकेगी। यदि किसी कारणवश यात्रा कमेटी आपको ले जाने में असमर्थ है तो सम्पूर्ण बुकिंग राशि वापिस कर दी जायेगी। इसकी जानकारी आपको 10 नवम्बर तक दे दी जायेगी।

आवेदक के लिये तीर्थ यात्रा कमेटी द्वारा निर्धारित नियम-शर्तें मान्य होंगी, अन्तिम निर्णय यात्रा कमेटी का होगा।

यात्रा की विशेष जानकारी हेतु जयपुर कार्यालय से संपर्क करें।

सम्पादकीय – 41

पंचास्तिकाय : अनुशीलन

– पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

गाथा- ६३

विगत गाथा ६२ में कहा था कि कर्म भी अपने स्वभाव से अपने को करते हैं और वैसे ही जीव भी कर्म स्वभावभाव से (औदयिक आदि भावों से) अपने को करते हैं।

अब इस ६३वीं गाथा में पूर्व पक्ष प्रस्तुत करते हुए तर्क दिया गया है कि जब जीव व कर्म में परस्पर अकर्त्तापन है, तो अन्य का दिया फल अन्य क्यों भोगे ?

मूल गाथा इसप्रकार है –

कम्मं कम्मं कुव्वदि जदि सो अप्पा करेदि अप्पाणं।
किध तस्स फलं भुंजदि अप्पा कम्मं च देदि फलं।।63।।

(हरिगीत)

यदि करम करते करम को, आतम करे निज आत्म को।
क्यों करम फल दे जीव को, क्यों जीव भोगे करम फल।।६३।।

आचार्य श्री कुन्दकुन्ददेव कहते हैं कि यदि कर्म कर्म को करे और आत्मा आत्मा को करे तो कर्म आत्मा को फल क्यों देगा तथा आत्मा उसका फल क्यों भोगेगा ?

आचार्य अमृतचन्द उक्त भाव का स्पष्टीकरण करते हुए टीका में कहते हैं कि यदि कर्म और जीव को परस्पर अकर्त्तापना हो तो ऐसा प्रश्न उत्पन्न होगा कि अन्य का दिया हुआ फल अन्य क्यों भोगे ? पर ऐसा तो है नहीं।

शास्त्रों में तो ऐसा कथन आता है कि पौद्गलिक कर्म जीव को फल देते हैं और जीव पौद्गलिक कर्मों का फल भोगता है।

अब कहते हैं कि यदि जीव कर्म को करता ही न हो तो जीव से नहीं किया गया कर्म जीव को फल क्यों देगा ? और जीव अपने से नहीं किए कर्म के फल को क्यों भोगेगा ? जीव से नहीं किया गया कर्म जीव को फल दे और जीव उस फल को भोगे ह्न यह तो किसी प्रकार न्याययुक्त नहीं है।

इसप्रकार 'कर्म कर्म को ही करता है और आत्मा आत्मा को ही करता है' यह बात सर्वथा सही नहीं है। इसके निराकरण के लिए अगली गाथा कहेंगे।

इस ६३वीं गाथा के संदर्भ में कवि हीरानन्दजी इसी बात को काव्य की भाषा में कहते हैं कि –

(दोहा)

करम करम कौं जो करै, अरु अपने कौं आप।
कैसैं फल आतम लहै, करम देइ फल ताप।।३०४।।

(सवैया इकतीसा)

जैसैं के पुद्गलाणु अपना करम करै,
और की अपैक्षा नाहिं वस्तुरूप लागे है।
ऐसैं ही आतम आप भाव सुद्धासुद्ध करै,
पर की अपैक्षा नाहिं आपरूप जागै है।
आनकर्म आनफल ताका भोगवत हारा,
आन कहौ कैसे बनै साँचा अंग भागै है।
स्याद्वाद जैनी जीव वस्तु जथा थान साधै,
निहचै विवहारी कै वस्तु तत्त्व आगे है।। ३०५।।

(दोहा)

करम करै फल भोगवै, करम रूप परिनाम।
जीव करै नहिं भोगवै निहचै सम्यक्धाम।।३०६।।

३०४ दोहे में पूर्वपक्ष की ओर से कहा है कि यदि करम अपना कार्य करे तथा जीव अपना कार्य करे तो करम का फल आत्मा कैसे प्राप्त करे? और कर्म आत्मा को फल क्यों देवे ? आगे सवैया में भी कहा है कि –

इसप्रकार अन्य कर्म करे और अन्य फल भोगे – ऐसा कैसे संभव है? जैन तो स्याद्वादी हैं; अतः वे तो वस्तु अपेक्षा लगाकर यथार्थ स्वरूप सिद्ध करते हैं, निश्चय व्यवहार की अपेक्षा लगाकर वस्तुतत्त्व साधते हैं।

इस गाथा को स्पष्ट करते हुए सत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी प्रश्न-उत्तर के रूप में कहते हुए प्रश्न करते हैं कि रूपी कर्म तो अपने रूपी स्वरूप का कर्त्ता है तो अरूपी आत्मा जड़ स्वरूप कर्मों को कैसे भोगे ? तथा जड़कर्म चैतन्य स्वरूप आत्मा को कैसे फल देवे ?

समाधान करते हुए वे कहते हैं कि निश्चयनय की अपेक्षा से आत्मा किसी भी प्रकार से कर्म को भोगता नहीं है, उसीप्रकार कर्म भी आत्मा को फल नहीं देता; किन्तु आत्मा जब अपने अज्ञान के कारण राग-द्वेष के परिणाम करता है, तब परपदार्थों को सुख-दुःख दाता मान लेता है तथा ऐसा कहता है कि कर्मों ने फल दिया है।

अज्ञानी जीव को आत्मा व पर पदार्थों की खबर नहीं है, इसकारण वह मानता है कि – 'मैं इन जड़ पदार्थों को भोगता हूँ।' छुरी लगने पर छुरी का अनुभव नहीं करता; बल्कि राग-द्वेष का अनुभव करता है। कहते हैं कि जब किसीका अग्नि में हाथ पड़ जावे तो वह अग्नि का अनुभव नहीं करता, उसके प्रति अपने राग-द्वेष का ही अनुभव करता है। यदि पर पदार्थ के (इष्ट-अनिष्ट) संयोग के कारण दुःख हो तो केवली भगवान को दुःख होना चाहिए; क्योंकि वे तो सब जानते हैं, समुद्घात के समय वे नरक में भी जाते हैं तो भी उन्हें दुःख नहीं होता; क्योंकि उन्हें राग-द्वेष नहीं है। अज्ञानी को भी पर के कारण दुःख नहीं है, शरीर में रोग आने पर वह ऐसा मानता है कि 'मुझे रोग आया, इसलिए दुःखी हूँ। रोग के प्रति वह जो द्वेष अनुभवता है, उसका उसे दुःख है।

यदि जीव स्वयं को पर से जुदा माने एवं ऐसा माने कि विकार

क्षणिक है। मैं तो शुद्ध चैतन्य द्रव्य हूँ – ऐसा भान करे तो धर्म हो; किन्तु अज्ञानी को शुद्ध चैतन्य स्वभाव का भान नहीं है, इसकारण वह विपरीत मान्यता करता है। बिच्छू काटने पर उसके डंक का अनुभव नहीं होता; किन्तु द्वेष का अनुभव करता है।

इसप्रकार अपने राग–द्वेष का परिणाम करते हुए तथा उन राग–द्वेष को पर के कारण हुए मानकर अज्ञानी पर रूप अनुभव करता है; किन्तु जड़ पदार्थ से आत्मा जुदा है, ऐसा नहीं मानता। इसकारण वह अज्ञान व राग–द्वेष का अनुभव करता हुआ ऐसा मानता है कि ह्न मैं परपदार्थों को भोगता हूँ। कर्मों ने मुझे फल दिया और मैं उस फल को भोगता हूँ – ऐसा मान रहा है। उस समय भी जो परिणाम करता है, वे परिणाम भी स्वयं से ही करता है, कर्मों के कारण नहीं करता; किन्तु कर्मों ने फल दिया और मैं उन्हें भोगता हूँ – ऐसा मानकर परद्रव्य सम्बन्धी सुख–दुःख मान लेता है। ●

गाथा– ६४

गाथा ६३ में किये गये प्रश्न का समाधान अब इस ६४वीं गाथा के माध्यम से करते हैं ह्न

मूल गाथा इसप्रकार है ह्न

ओगाढगाढणिचिदो पोग्गलकाएहिं सव्वदो लोगो।
सुहमेहिं बादरेहिं य णंताणंतेहिं विविधेहिं ।।64।।

(हरिगीत)

करम पुद्गल वर्गणायें अनन्त विविध प्रकार की।
अवगाढ़–गाढ़–प्रगाढ़ हैं सर्वत्र व्यापक लोक में।।64।।

आचार्य श्री कुन्दकुन्ददेव कहते हैं कि तीनों लोक सर्वत्र विविध प्रकार के अनन्तान्त सूक्ष्म और बादर पुद्गलकाय से अवगाहित होकर भरा हुआ है।

आचार्य अमृतचन्द्र टीका में ऐसा कहते हैं कि कर्मयोग्य पुद्गल अर्थात् कार्माणवर्गणारूप पुद्गलस्कन्ध अंजनचूर्ण से भरी हुई डिब्बी की भाँति समस्त लोक में व्याप्त हैं, इसलिए जहाँ आत्मा है वहाँ कहीं से लाये बिना वे पुद्गलस्कन्ध स्थित हैं; अतः बिना किए परस्पर निमित्त–नैमित्तिक भाव से कर्म का फल भोगेंगे।।६४।।

कवि हीरानन्दजी अपनी काव्य की भाषा में कहते हैं कि ह्न

(दोहा)

सूक्ष्म–बादर भेद करि, नंतानन्त प्रकार ।
विविध भाँति पुग्गल खचित, सकल लोक अनिवार।।३०७।।

(सवैया इकतीसा)

जैसैं के अंजनचूर संपुट संपूरन मैं,
रीति ठौर कोई नाहिं अंजन घनाई है।
तैसैं कर्म लाइक कैं पुग्गल समूहभया,
लोकाकास भासमान सबतैं सुहाई है।
ऐसैं लोकाकास मांहिं आत्मा जहाँ है तहाँ,
पुद्गल समूह रास बनी ही बनाई है।
या तैं जीव कर्म दोनौं एकमेक एकै ठौर,
जैनी जिनवाणी जानि सांची बात पाई है।। ३०८।।

(दोहा)

छहौं दरवकरि सरव नभ, व्यापक अति अवगाढ़।
परत्वभावकरि बढ़त नहिं, निज–सुभावकरि बाढ़।।३०९।।

दोहा नं. ३०७ में कवि का कहना है कि सूक्ष्म एवं बादर (स्थूल) के भेद से पुद्गल अनेक प्रकार के हैं। सम्पूर्ण लोक में विविध प्रकार के पुद्गल भरे हुए हैं। आगे सवैया में कहा कि जैसे कि अंजन की डिब्बी में अंजन ठसाठस भरा है, किंचित् भी जगह खाली नहीं है, उसी प्रकार लोक में पुद्गल समूह भरे हुए हैं। सम्पूर्ण लोकाकाश में जहाँ आत्मा है वहीं पुद्गल की राशि विद्यमान है। इसलिए जीव व कर्म – दोनों एक ही जगह एकमेक भरे हुए हैं।

गाथा ६४ का व्याख्यान करते हुए गुरुदेव श्रीकानजीस्वामी कहते हैं कि तीनों लोक पुद्गल स्कन्धों के द्वारा भरपूर भरा हुआ है। वे पुद्गल परमाणु अतिसूक्ष्म हैं तथा अतिबादर भी हैं एवं अपरिमित संख्या वाले हैं। वे परमाणु व स्कंध के भेद से अनेक प्रकार के हैं।

तीनों लोकों में जीव भरे हुए हैं; कोई भी जगह जीवों से खाली नहीं है। इसीप्रकार पुद्गल स्कन्ध भी अतिप्रगाढ़ रूप से भरे हुए हैं। वे अतिसूक्ष्म भी हैं और अति स्थूल भी हैं। उनकी संख्या भी अमाप है। दो परमाणुओं के स्कन्ध से लगाकर अनन्त परमाणुओं के स्कन्ध अनेक विचित्रता लिए हुए हैं। औदारिक, कार्माण, तैजस शरीर के परमाणुओं के स्कन्ध भी ठसाठस भरे हुए हैं।

जिसप्रकार जगत में मकानों का प्लास्टर जुदी–जुदी जाति का होता है, वह अपने–अपने कारण से होता है, कारीगर के कारण नहीं होता, उसी प्रकार अनेक प्रकार की विचित्रता वाले परमाणु के स्कन्ध स्वयं के कारण होते हैं, अन्य के कारण नहीं।

निगोदिया जीव चाहे नीचे हों या सिद्धशिला पर हों तो भी कर्म बाँधते ही हैं। तथा सिद्धशिला में रहने वाले सिद्ध (मुक्त) कर्म नहीं बाँधते। केवली समुद्घात करते समय जहाँ केवली हैं, वहीं निगोद के जीव हैं। केवली भगवान को योग के कारण एक समय को कर्म आते हैं और दूसरे समय खिर जाते हैं तथा उसी स्थान पर रहनेवाले निगोदिया जीव मोहनीय कर्म का बंध करते हैं। एक ही क्षेत्र में रहने वाले मुनि अमुक बंध बांधते हैं तथा अज्ञानी अन्य प्रकार के कर्म बांधते हैं।

इसप्रकार जीवों की पात्रता एवं धर्म एवं अधर्म के भावों के आधार कर्मों का बन्ध एवं निर्जरा आदि होते हैं, क्षेत्र के कारण नहीं। ●

गाथा– ६५

विगत गाथा ६४ में कहा है कि कर्म योग्य पुद्गल वर्गणायें अंजनचूर्ण से भरी हुई डिब्बी के समान समस्त लोक में व्याप्त हैं, इसलिए जहाँ आत्मा है वहीं कहीं से लाये बिना ही वे सूक्ष्म व स्थूल पुद्गल वर्गणायें भी स्थित है।

अब इस ६५वीं गाथा में कहते हैं कि जब आत्मा अपने भाव को करता है, तब वहाँ रहने वाले पुद्गल अपनी तत्समय की योग्यता से जीव में अवगाहरूप से प्रविष्ट होकर कर्मभाव को प्राप्त होते हैं।

मूल गाथा इसप्रकार है –

अत्ता कुणदि सभावं तत्थ गदा पोग्गला सभावेहिं।
गच्छंति कम्मभावं अण्णाण्णोगाहमवगाढा ।।65।।

(हरिगीत)

आतम करे क्रोधादि तब पुद्गल अणु निजभाव से।
करमत्व परिणत होंय अर अन्योन्य अवगहान करें।।65।।

आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं कि आत्मा जब अपने मोहराग–द्वेषरूप भावों को करता है, तब वहाँ रहनेवाले पुद्गल कर्म अपने भावों से जीव में विशिष्ट प्रकार से अन्योन्य अवगाहरूप से प्रविष्ट हुए कर्मभाव को प्राप्त होते हैं।

आचार्य श्री अमृतचन्द्र समय व्याख्या टीका में यह बताते हैं कि अन्य द्वारा किये बिना कर्म की उत्पत्ति किस प्रकार होती है ?

आत्मा वास्तव में संसार अवस्था में पारिणामिक चैतन्य स्वभाव को छोड़े बिना ही अनादि बन्धन वद्ध होने से अनादि मोह–राग–द्वेष द्वारा रागादि अविशुद्ध भावों से परिणमित होता है। वह संसारी आत्मा जहाँ और जब अपने भावों को राग–द्वेष रूप करता है, वहाँ और उसी समय उसी भाव को निमित्त बनाकर कार्माणवर्गणायें परस्पर अवगाह रूप से प्रविष्ट हो कर्मपने को प्राप्त होती हैं।

इसप्रकार जीव द्वारा किये बिना ही पुद्गल स्वयं कर्मरूप से परिणमित होते हैं।

कवि हीरानन्दजी इस गाथा के भाव पद्य में प्रस्तुत करते हैं –

(दोहा)

निज सुभाव आतम करै, पुग्गल सहज सुभाव।
करमभाव करि परिनवै, एकै खेत रहाव ।।३१०।।

(सवैया इकतीसा)

संसारी अवस्था मैं जीव चेतना बिहारी,
आदि अन्त बिना, मोह–राग–दोष भर्‌या है।
चीकनै असुद्ध भाव, जाही समै करै जीव,
ताही समय कर्त्ता ह्वै लोकभाव धर्या है।।
ताही कौ निमित्त मानि जीव परदेस विसै,
कर्मपुंज लगै गाढ़ एक भाव कर्या है।
अपने सुभाव न्यारै एकभाव धारै लसै,
स्याद्वाद वाणी हीतैं जीवलोकतर्या है ।। ३११।।

(दोहा)

निहचै करि जो देखिये, वस्तु सरब निज रूप।
पर स्वरूप धारक नहीं, पैविवहार अनूप।।३१२।।

उक्त पद्य में कवि का कहना है कि – आत्मा और पुद्गल दोनों अपने–अपने स्वभाव में रहते हैं। दोनों एक ही क्षेत्र में रहकर करम भाव से परिणमन करते हैं।

आगे सवैया में कहते हैं कि संसारी अवस्था में चेतना विहारी जीव आदि रहित अर्थात् अनादि से मोह–राग–द्वेष से भरा है। जब जीव रागादि अशुद्ध भाव करता है, उसी समय पर का कर्त्ता बनकर संसारी भाव को धारण करता है। उस कर्तृत्वभाव का निमित्त पाकर जीव को प्रदेशों में कर्मबंध होता है। जीव जब अपने स्वभाव को धारण करता है, तब स्याद्वादवाणी के आश्रय से तर जाता है।

दोहे में कहते हैं कि निश्चय से देखें तो वस्तु अपने स्वरूप ही है, पर रूप का धारक नहीं है।

गाथा ६५ के भावार्थ में गुरुदेवश्री कानजीस्वामी कहते हैं कि आत्मा संसार अवस्था में अनादिकाल से परद्रव्य के निमित्त से मिथ्यात्व रागादि अशुद्ध भावों रूप परिणम रहा है। आत्मा पर से जुदा है – ऐसा भाव किए बिना अशुद्ध भाव रूप से परिणमता है। प्रस्तुत आत्मा तो अरूपी शुद्ध चैतन्य स्वभावी हैं तथा कर्म रूपी एवं जड़स्वभावी हैं, शरीर भी रूपी है।

यद्यपि दोनों भिन्न–भिन्न हैं; परन्तु शरीर, कर्म, कुटुम्ब मेरे हैं – ऐसे मिथ्यात्व के कारण अपने चैतन्य स्वभाव से चूकने की भूल से – पर के लक्ष्य से स्त्री–पुत्र–कर्म व शरीर मेरे हैं एवं मैं उनका हूँ – ऐसे अज्ञानभाव से मोह–राग–द्वेष रूप परिणमता है।

आत्मा कर्म एवं विकार से जुदा है – अब तक ऐसा भेद नहीं किया। अनादिकाल से निगोद से लेकर सब संसारी जीव स्वयं के कारण विभावरूप परिणमन करते हैं और कर्म भी स्वतंत्रपने बंधते हैं; क्योंकि ज्ञानी ज्ञानभाव का कर्त्ता है तथा अज्ञानी अपने अज्ञान भाव कर्त्ता है न ! जड़ व चेतन की दोनों क्रियायें स्वतंत्र हैं।

अज्ञानी को ऐसी स्वतंत्रता की खबर नहीं है; अतः वह ऐसा मानता है कि मेरे कारण शरीर चलता है एवं शरीर से आत्मा में कार्य होते हैं ? उसे यह भी खबर नहीं है कि जीव को जो रागादि भाव होते हैं, उनका निमित्त पाकर कार्माण वर्गणायें अपनी उपादान शक्ति से आठ कर्मरूप होती हैं तथा वे परमाणु उन कर्मों के कर्त्ता होते हैं। जीव उन कर्मों का कर्त्ता नहीं है। कर्म अपने स्वयं के कारण कर्मरूप परिणमते हैं। वे अपने में उपादान कारण हैं तथा जीव के राग–द्वेष उनमें निमित्त होते हैं।

इससे स्पष्ट है कि जब जीव अपनी तत्समय की योग्यता से रागादि अशुद्ध भाव करता है उस समय वहीं पर स्थित कार्माण वर्गणायें अपनी स्वतंत्र योग्यता से कर्मरूप होकर परिणमित होती हैं। दोनों में ऐसा ही निमित्त–नैमित्तिक सहज सम्बन्ध है। ●

यदि आप हमारा सहयोग करना चाहते हैं तो इसे ध्यान से पढ़िये !

1. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के शिरोमणिसंरक्षक, परमसंरक्षक, संरक्षक बनकर – दातार का नाम प्रवचन मण्डप के पास बने सूचना पट्ट पर लिखा जावेगा। (विशेष जानकारी के लिये संस्था से संपर्क करें)

2. आध्यात्मिक शिक्षण शिविरों के आयोजन हेतु परमसंरक्षक के रूप में 1 लाख रुपये अथवा संरक्षक के रूप में 51 हजार रुपये की राशि देकर; दातार का नाम शिविर की पत्रिका में आजीवन परमसंरक्षक/संरक्षक के रूप में छापा जायेगा।

3. आध्यात्मिक शिक्षण शिविरों के आयोजन हेतु आमंत्रणकर्ता के रूप में 51 हजार रुपये, विधान के आमंत्रणकर्ता के रूप में 11 हजार रुपये की राशि देकर; दातार का नाम शिविर की पत्रिका में शिविर/विधान के आमंत्रणकर्त्ता के रूप में छापा जायेगा।

4. महाविद्यालय में 1 छात्र के अध्ययन हेतु 30 हजार प्रतिवर्ष (5 वर्ष तक) देकर या 5 वर्ष के लिए एक मुश्त 1 लाख 41 हजार रुपये देकर अथवा 1 छात्र के आजीवन अध्ययन हेतु एक मुश्त 4 लाख रुपये प्रदान कर।

5. जी – जागरण पर प्रतिदिन डॉ. हुकमचंद भारिल्ल के प्रवचन प्रात: 6.40 से 7.00 बजे तक आते हैं, उसके प्रसारण हेतु 4000/– रुपये प्रतिदिन के हिसाब से 1 लाख 20 हजार रुपये प्रतिमाह व्यय होते हैं। जो भी दातार कम से कम 10 दिन की स्वीकृति देंगे, उनका नाम सहयोगी के रूप में टी.वी पर प्रवचन के पहले और बाद में दिया जायेगा।

6. भोजनशाला में 1 दिन के भोजन हेतु 15 हजार रुपये तथा 1 समय के भोजन हेतु 8000/–रुपये की राशि प्रदान कर या टेबिल–कुर्सी के 1 सेट हेतु 7500/–रुपये देकर।

7. सत्साहित्य प्रकाशन हेतु –

(अ) साहित्य की कीमत कम करने में अनुदान देकर।

(ब) साहित्य प्रकाशन ध्रुवफण्ड में कोई भी राशि देकर।

(स) ग्रन्थमाला के सदस्य के रूप में 1,500/– रुपये देकर; दातार को ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित प्रत्येक नया प्रकाशन भेजा जायेगा।

(द) अपनी ओर से सत्साहित्य के नि:शुल्क वितरण हेतु सहयोग देकर।

8. मंदिर पूजन में स्थायी पूजन फण्ड हेतु पूजन तिथि के रूप में 500/– रुपये की राशि देकर।

9. वीतराग–विज्ञान मासिक पत्रिका के प्रकाशन में संरक्षक 21 हजार, परम सहायक 11 हजार, सहायक 5100/– रुपये, विशिष्ट सहायक के रूप में 1100/– रुपये अनुदान देकर या 1 अंक के प्रकाशन में 5100/– रुपये का सहयोग देकर; दातार का नाम पत्रिका के 1 अंक में प्रकाशित किया जायेगा।

10. जैनपथ प्रदर्शक समाचार पत्र में अपने धार्मिक आयोजनों का विज्ञापन देकर अथवा संरक्षक सदस्य के रूप में 11 हजार की राशि देकर।

11. रात्रिकालीन पाठशालाओं के संचालन हेतु 6 हजार रुपये प्रति पाठशाला के हिसाब से वार्षिक का सहयोग देकर।

आप अपनी दान राशि **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट** के नाम से चैक /ड्राफ्ट द्वारा भेजकर अथवा पंजाब नेशनल बैंक (बापूनगर शाखा) में संस्था के अकाउंट नम्बर – 0247000100024619 में भी जमा करा सकते हैं। बैंक में जो राशि जमा करावें, उसकी सूचना अवश्य भेजें ताकि आपको उसकी रसीद भेजी जा सके।

यदि आप 80 जी की छूट का लाभ उठाना चाहते हैं तो अपनी दान राशि **पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट** के नाम से चैक/ड्राफ्ट द्वारा भेजें अथवा पंजाब नेशनल बैंक (बापूनगर शाखा) में संस्था के अकाउंट नम्बर – 0247000101237122 में जमा करा सकते हैं।

निवेदक – पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

मोक्षमार्ग प्रकाशक का सार

59 पन्द्रहवाँ प्रवचन – डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे...)

अबतक निश्चयाभासी गृहीत मिथ्यादृष्टि की शास्त्राभ्यास को निरर्थक बताना और गुणस्थान-मार्गणास्थान आदि के विचार को विकल्प ठहराना - इन दो प्रवृत्तियों की चर्चा की।

अब तपश्चरणादि को वृथा क्लेश मानना और व्रतादिक करने को बंधन में पड़ना ठहराने की प्रवृत्ति की चर्चा करते हैं; जो इसप्रकार है -

''तथा वह तपश्चरण को वृथा क्लेश ठहराता है; सो मोक्षमार्गी होने पर तो संसारी जीवों से उल्टी परिणति चाहिए।

संसारियों को इष्ट-अनिष्ट सामग्री से राग-द्वेष होता है, इसके राग-द्वेष नहीं होना चाहिए।

वहाँ राग छोड़ने के अर्थ इष्ट सामग्री भोजनादिक का त्यागी होता है और द्वेष छोड़ने के अर्थ अनिष्ट सामग्री अनशनादि को अंगीकार करता है। स्वाधीनरूप से ऐसा साधन हो तो पराधीन इष्ट-अनिष्ट सामग्री मिलने पर भी राग-द्वेष न हो, सो होना तो ऐसा ही चाहिए; परन्तु तुझे अनशनादि से द्वेष हुआ, इसलिए उसे क्लेश ठहराया।

जब यह क्लेश हुआ, तब भोजन करना सुख स्वयमेव ठहरा और वहाँ राग आया, सो ऐसी परिणति तो संसारियों के पाई ही जाती है, तूने मोक्षमार्गी होकर क्या किया ?

यदि तू कहेगा - कितने ही सम्यग्दृष्टि भी तपश्चरण नहीं करते हैं ?

उत्तर - कारण विशेष से तप नहीं हो सकता, परन्तु श्रद्धान में तो तप को भला जानते हैं और उसके साधन का उद्यम रखते हैं।

तुझे तो श्रद्धान यह है कि तप करना क्लेश है तथा तप का तेरे उद्यम नहीं है, इसलिए तुझे सम्यग्दृष्टि कैसे हो ?[१]''

तुझे सम्यग्दृष्टि कैसे हो - इस वाक्य खण्ड का अर्थ यह है कि ऐसी स्थिति में तेरी दृष्टि सम्यक् कैसे हो सकती है ?

उक्त कथन में यह बात अत्यन्त स्पष्टरूप से कही गई है कि मोक्षमार्गी जीवों की परिणति तो संसारी जीवों की परिणति से उल्टी होना चाहिए; किन्तु इस निश्चयाभासी की परिणति में कोई सुधार दिखाई नहीं देता।

अपनी बात को पुष्ट करने के लिए शास्त्रों का सहारा लेता हुआ यह कहता है कि शास्त्रों में तो ऐसा लिखा है कि तप आदि में क्लेश करो तो करो, ज्ञान के बिना तो कुछ भी होनेवाला नहीं है।

अरे भाई ! यह बात तो उन लोगों के लिए कही थी, जो लोग तत्त्वज्ञान से पराङ्मुख हैं, केवल तप से ही मुक्ति मानते हैं। उक्त कथन में **तत्त्वज्ञान होने पर रागादि से निवृत्तिरूप तप का निषेध नहीं है।**

यदि तप निरर्थक होता तो गणधरादि तप क्यों करते ?

इसीप्रकार व्रतादिक के संबंध में भी समझना चाहिए।

इस पर वह कहता है कि यदि परिणाम शुद्ध हैं तो फिर तप नहीं किया, व्रत नहीं लिये तो क्या फर्क पड़ता है ?

अरे, भाई ! हम ऐसा भी तो कह सकते हैं कि - यदि परिणाम शुद्ध हैं तो फिर व्रत लेने और तप करने में क्या परेशानी है; क्योंकि परेशानी तो तब होती है, जब परिणाम शुद्ध न हों।

उक्त संदर्भ में पण्डित टोडरमलजी का कहना यह है कि -

''यदि यह हिंसादि कार्य तेरे परिणाम बिना स्वयमेव होते हों तो हम ऐसा मानें और यदि तू अपने परिणाम से कार्य करता है तो वहाँ तेरे परिणाम शुद्ध कैसे कहें ? विषय-सेवनादि क्रिया अथवा प्रमादरूप गमनादि क्रिया परिणाम बिना कैसे हो ?

वह क्रिया तो स्वयं उद्यमी होकर तू करता है और वहाँ हिंसादिक होते हैं, उन्हें गिनता नहीं है, परिणाम शुद्ध मानता है।

सो ऐसी मान्यता से तेरे परिणाम अशुद्ध ही रहेंगे।

फिर वह कहता है ह्न परिणामों को रोकें, बाह्य हिंसादिक भी कम करें; परन्तु प्रतिज्ञा करने में बंधन होता है; इसलिए प्रतिज्ञारूप व्रत अंगीकार नहीं करना ?

जिस कार्य को करने की आशा रहे, उसकी प्रतिज्ञा नहीं लेते और जिसकी आशा रहे उससे राग रहता है। उस रागभाव से बिना कार्य किये भी अविरति से कर्मबंध होता रहता है; इसलिए प्रतिज्ञा अवश्य करने योग्य है तथा कार्य करने का बंधन हुए बिना परिणाम कैसेरुकेंगे ?

प्रयोजन पड़ने पर तद्रूप परिणाम होंगे ही होंगे तथा बिना प्रयोजन पड़े उसकी आशा रहती है; इसलिए प्रतिज्ञा करना योग्य है।

फिर वह कहता है कि - न जाने कैसा उदय आये और बाद में प्रतिज्ञा भंग हो, तो महापाप लगता है। इसलिए प्रारब्ध अनुसार कार्य बने सो बनो, प्रतिज्ञा का विकल्प नहीं करना ?

समाधान ह्न प्रतिज्ञा ग्रहण करते हुए जिसका निर्वाह होता न जाने, वह प्रतिज्ञा तो न करे; प्रतिज्ञा लेते समय ही यह अभिप्राय रहे कि प्रयोजन पड़ने पर छोड़ दूँगा तो वह प्रतिज्ञा क्या कार्यकारी हुई ?

प्रतिज्ञा ग्रहण करते हुए तो यह परिणाम है कि मरणान्त होने पर भी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ूँगा तो ऐसी प्रतिज्ञा करना युक्त ही है।

बिना प्रतिज्ञा किये अविरति संबंधी बंध नहीं मिटता।[१]''

इसप्रकार हम देखते हैं कि न तो ऐसी प्रतिज्ञायें लेना ही ठीक है कि जिनका निर्वाह संभव न हो और भविष्य की काल्पनिक आशंका के भय से प्रतिज्ञा नहीं लेना भी ठीक नहीं है।

१. मोक्षमार्गप्रकाशक, सातवाँ अधिकार, पृष्ठ २०३

१. मोक्षमार्गप्रकाशक, सातवाँ अधिकार, पृष्ठ २०३-२०४

उक्त संदर्भ में पण्डितजी का संतुलित दृष्टिकोण इसप्रकार है -

''तथा आगामी उदय के भय से प्रतिज्ञा न ली जाये तो उदय को विचारने से सर्व ही कर्तव्य का नाश होता है। जैसे - अपने को पचता जाने उतना भोजन करे। कदाचित् किसी को भोजन से अजीर्ण हुआ हो और उस भय से भोजन करना छोड़ दे तो मरण ही होगा। उसीप्रकार अपने से निर्वाह होता जाने उतनी प्रतिज्ञा करे।

कदाचित् किसी के प्रतिज्ञा से भ्रष्टपना हुआ हो और उस भय से प्रतिज्ञा छोड़ दे तो असंयम ही होगा; इसलिए जो बन सके वह प्रतिज्ञा लेना योग्य है।[१]''

प्रतिज्ञा लेने और नहीं लेने के संदर्भ में पण्डितजी का मार्गदर्शन अत्यन्त स्पष्ट और संतुलित है। न तो वे किसी को प्रतिज्ञा लेने के लिए बाध्य करने को उचित मानते हैं और न प्रतिज्ञा नहीं लेने की बात को उचित समझते हैं। इसलिए जहाँ एक ओर सावधान करते हुए वे कहते हैं कि वर्तमान परिणामों के भरोसे प्रतिज्ञा ले लेना ठीक नहीं है, भविष्य के बारे में गंभीरता से सोच-समझकर प्रतिज्ञा लेना चाहिए; वहीं दूसरी ओर यह भी कहते हैं कि भविष्य में प्रतिज्ञा भंग होने के अनावश्यक भय से प्रतिज्ञा लेना ही नहीं - यह भी ठीक नहीं है।

तात्पर्य यह है कि पूरी गंभीरता से सोच-समझकर प्रतिज्ञा लेना और उसे पूरी दृढता से पालना - यह ही समझदारी का काम है।

शास्त्राभ्यास को निरर्थक मानना, गुणस्थानादि के विचार को विकल्प ठहराना, तपश्चरण को क्लेशरूप मानना और व्रतादिक धारण करने को बंधन में पड़ना मानना; निश्चयाभासी गृहीतमिथ्यादृष्टि की उक्त चार प्रकार की मान्यताओं की चर्चा के उपरांत अब पूजनादि कार्यों को शुभास्रव जानकर हेय कहने रूप प्रवृत्ति की चर्चा करते हैं।

उक्त संदर्भ में पण्डित टोडरमलजी का कहना यह है -

''तथा वह पूजनादि कार्य को शुभास्रव जानकर हेय मानता है, सो यह सत्य ही है, परन्तु; यदि इन कार्यों को छोड़कर शुद्धोपयोगरूप हो तो भला ही है और विषय-कषायरूप-अशुभरूप प्रवर्ते तो अपना बुरा ही किया।

शुभोपयोग से स्वर्गादि हों अथवा भली वासना से या भले निमित्त से कर्म के स्थिति अनुभाग घट जायें तो सम्यक्त्वादि की भी प्राप्ति हो जाये और अशुभोपयोग से नरक-निगोदादि हों अथवा बुरी वासना से या बुरे निमित्त से कर्म के स्थिति अनुभाग बढ जायें तो सम्यक्त्वादिक महादुर्लभ हो जायें।

तथा शुभोपयोग होने से कषाय मंद होती है और अशुभोपयोग होने से तीव्र होती है; सो मंदकषाय का कार्य छोड़कर तीव्र कषाय का कार्य करना तो ऐसा है जैसे कड़वी वस्तु न खाना और विष खाना।

सो यह अज्ञानता है।[२]''

उक्त कथन का आशय यह है कि पूजनादि कार्य और तत्संबंधी शुभ भाव लड्डू खाने जैसे नहीं हैं; कड़वी वस्तु खाने के समान है; परन्तु जहर खाने से तो अच्छे ही हैं।

१. मोक्षमार्गप्रकाशक, सातवाँ अधिकार, पृष्ठ २०४ २. वही, पृष्ठ २०५

यदि कड़वी वस्तु खाने से जहर खाने से बच जाते हैं तो कड़वी वस्तु खाना घाटे का काम नहीं है। इसीप्रकार पूजनादि शुभ कार्यों और तत्संबंधी शुभभावों से विषय-कषायादिरूप अशुभ क्रियाओं और तत्संबंधी अशुभभावों से बच जाते हैं तो यह भी घाटे का काम नहीं है; समझदारी की ही बात है।

उक्त संदर्भ में हमसे भी अनेक लोग कहते हैं कि आप भी तो पूजा-पाठ की कम आलोचना नहीं करते।

अरे, भाई ! हम पूजा-पाठ की आलोचना नहीं करते; उसमें आई हुईं विकृतियों को उजागर करते हैं। भगवान की पूजा-भक्ति तो उनमें विद्यमान गुणों के प्रति अनुराग को कहते हैं।

कहा भी है - **''अर्हदादि गुणानुरागो भक्ति:[१] - अरहंत आदि के गुणों में अनुराग को भक्ति कहते हैं।''**

अरे, भाई ! हम भगवान की भक्ति का नहीं, भक्ति के नाम पर होनेवाले नाच-गाने का निषेध करते हैं; नाच-गाने का भी नहीं, अमर्यादित उछलने-कूदने का निषेध करते हैं।

इस संबंध में विशेष चर्चा आगे चलकर व्यवहाराभासी गृहीत मिथ्यादृष्टि की चर्चा के समय होगी।

इसप्रकार अनेक प्रकार से समझाने पर भी जब उसका समाधान नहीं होता तो फिर शास्त्रों का सहारा लेते हुए वह कहता है कि अध्यात्मशास्त्रों में तो शुभ-अशुभ भावों को समान ही कहा है; अत: हम दोनों को समानरूप से ही हेय मानते हैं। यही कारण है कि हम पाप के समान ही पुण्यभाव को भी छोड़ना चाहते हैं।

अरे भाई ! जो लोग शुद्धोपयोग को तो पहिचानते नहीं और शुभोपयोग को मोक्ष का कारण मानकर उपादेय मानते हैं; उन्हें समझाने के लिए यह बताया है कि शुभ और अशुभ - दोनों प्रकार के भाव अशुद्धभाव हैं, बंध के कारण हैं; अत: समान ही हैं।

यद्यपि यह बात परमसत्य है; तथापि अशुभ भावों से पापबंध और शुभ भावों से पुण्यबंध होता है। इतना अन्तर तो दोनों में है ही।

प्रस्तुत कथन का निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए पण्डितजी लिखते हैं -

''ज्ञानी किंचित्मात्र भी कषायरूप कार्य नहीं करना चाहता; परन्तु जहाँ बहुत कषायरूप अशुभ कार्य होता जाने, वहाँ इच्छा करके अल्प कषायरूप शुभ कार्य करने का उद्यम करता है।[२]''

वस्तुस्थिति यह है कि अज्ञान अवस्था में तो शुद्धोपयोग होता ही नहीं; ज्ञानावस्था में भी शुद्धोपयोग का काल अत्यल्प होता है।

ऐसी स्थिति में यदि शास्त्राभ्यास नहीं करेगा; गुणस्थानादि का विचार भी नहीं करेगा, व्रत भी नहीं लेगा, तप भी नहीं करेगा और भक्ति-पूजन भी नहीं करेगा तो फिर करेगा क्या ? विषय-कषायादिक में ही प्रवर्तेगा, धंधा-पानी में ही लगा रहेगा, इसप्रकार निरन्तर अशुभ में ही रहेगा तो पापबंध ही करेगा। यदि यह शुभ और अशुभ कुछ भी नहीं करेगा तो प्रमाद में पड़ा रहेगा। प्रमाद में पड़ा रहना भी तो अशुभ ही है।

(क्रमश:)

१. भगवती आराधना, गाथा ४६ की विजयोदया टीका
२. मोक्षमार्गप्रकाशक, सातवाँ अधिकार, पृष्ठ २०६

फैडरेशन की मासिक पूजन संपन्न

जयपुर (राज.) : अ. भा. जैन युवा फैडरेशन जयपुर महानगर द्वारा प्रत्येक माह जयपुर शहर के मंदिरों में सामूहिक पूजन का कार्यक्रम का आयोजन किया जाता है।

इसी क्रम में अगस्त माह की पूजन दिनाँक 22 अगस्त को जयपुर शहर के समीप स्थित श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बैनाड़ में सम्पन्न हुई। इस अवसर पर बैनाड़ स्थित श्री चन्द्रप्रभ जिनालय में पंचपरमेष्ठी विधान का आयोजन किया गया, जिसमें फैडरेशन के लगभग 115 सदस्यों की उल्लेखनीय उपस्थिति रही।

शोक समाचार

दिल्ली (दिलशाद गार्डन) निवासी श्रीमती अर्चना जैन धर्मपत्नी श्री नीरजजी जैन का दिनाँक 3 अगस्त को शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। आप बहुत स्वाध्यायी थीं। ज्ञातव्य है कि आप श्री आदीशजी जैन दिल्ली की बहिन थीं। दिवंगत आत्मा चतुर्गति के दु:खों से छूटकर शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हो ह्न यही मंगल भावना है।

शिविर में अवश्य पधारें !

ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन जयपुर में पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट जयपुर द्वारा 13 वाँ बृहद् आध्यात्मिक शिक्षण शिविर दिनांक 10 से 19 अक्टूबर, 2010 तक आयोजित किया जा रहा है। आप सभी को लाभ लेने हेतु भावभीना आमंत्रण है। कृपया अपने आने की पूर्व सूचना अवश्य देवें।

पत्रिका आगामी अंक में प्रकाशित की जायेगी।

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

04 से 11 सितम्बर	मुम्बई	श्वेताम्बर पर्यूषण
12 से 23 सितम्बर	बड़ौदा	दशलक्षण महापर्व
10 से 19 अक्टूबर	जयपुर	शिक्षण शिविर
21 अक्टूबर	मेरठ	प्रवचन
22 से 24 अक्टूबर	खतौली	सेमिनार व प्रवचन
2 नवम्बर	मंगलायतन विश्वविद्यालय	दीक्षान्त समारोह
14 व 15 नवम्बर	हेरले (महा.)	जिनमंदिर शिलान्यास
18 से 21 नवम्बर	दिल्ली	अष्टाह्निका महापर्व
17 से 23 दिसम्बर	मंगलायतन	पंचकल्याणक
25 से 31 दिसम्बर	इन्दौर(मालवा)	फैडरेशन यात्रा
2 से 4 जनवरी	उदयपुर	वेदी प्रतिष्ठा
15 से 20 जनवरी	उदयपुर	पंचकल्याणक

आदर्श विद्यार्थी पुरस्कार

नागपुर (महा.) : यहाँ श्री कुन्दकुन्द दि. जैन स्वाध्याय मण्डल ट्रस्ट द्वारा संचालित महावीर विद्या निकेतन में आदर्श विद्यार्थी पुरस्कार दिये गये।

वर्ष 2009-10 के लिए नवीं कक्षा के छात्र श्री अनुभवजी जैन हटा को सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी का पुरस्कार प्रदान कर उन्हें विशेष चल ट्रॉफी प्रदान की गई। द्वितीय स्थान पर आठवीं कक्षा के विद्यार्थी श्री आभासजी जैन जबलपुर का चयन किया गया। इन दोनों विद्यार्थियों को 'चिरन्तन ज्वैल्स' की ओर से सोने की चेन देकर पुरस्कृत किया गया। सांत्वना पुरस्कार के रूप में श्री सागरजी जैन पिण्डरई को सम्मानित किया गया। इसी प्रसंग पर चयन प्रक्रिया में नामांकित तीन अन्य विद्यार्थियों में श्री संचितजी भायजी, श्री प्रतीकजी चुम्बले एवं श्री साकेतजी सिंघई को भी सम्मानित किया गया।

कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ. राकेशजी शास्त्री नागपुर ने की। विशिष्ट अतिथि श्री जिनेन्द्रजी मोदी एवं श्री विमलजी देवड़िया थे।

कार्यक्रम का सफल संचालन विद्यानिकेतन के प्राचार्य पण्डित अशोकजी शास्त्री ने तथा आभार प्रदर्शन पण्डित मनीषजी शास्त्री ने किया।

शाकाहार दिवस संपन्न

उदयपुर (राज.) : यहाँ हिरणमगरी सेक्टर-11 में श्री महावीर दि. जैन चेरिटेबल ट्रस्ट के तत्त्वावधान में श्री वीतराग-विज्ञान पाठशाला के बच्चों द्वारा शाकाहार दिवस मनाया गया। इस अवसर पर पण्डित खेमचंदजी शास्त्री के निर्देशन में शाकाहार विषय पर चित्रकला प्रतियोगिता आयोजित की गई। जिसमें पाँच वर्गों में लगभग 85 बच्चों ने भाग लिया।

प्रतियोगिता में **शिशु वर्ग प्रथम** में हितांश जैन प्रथम, लहन जैन द्वितीय एवं कु.तनिष्का व दिव्य जैन तृतीय रहे; **शिशु वर्ग द्वितीय** में कु.लिपि जैन प्रथम, नीलांश जैन द्वितीय एवं शीर्ष जैन व तनिष जैन तृतीय रहे; **बाल वर्ग प्रथम** में कु.ऐशा जैन प्रथम, कु.गर्विता जैन द्वितीय एवं महेशपुरी गोस्वामी तृतीय स्थान पर रहे; **बाल वर्ग द्वितीय** में कु.हर्षिता जैन प्रथम, उत्सव जैन द्वितीय एवं हर्षिल जैन, भव्य जैन व चर्चित जैन ने तृतीय स्थान प्राप्त किया; **किशोर वर्ग** में कु. रूपाली जैन प्रथम, कु.दिव्यांशा जैन व कु.रविना जैन द्वितीय एवं सहज कोडिया व ग्रेसिम जैन तृतीय स्थान पर रहे।

प्रकाशन तिथि : 28 अगस्त 2010

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
सह-सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा**, डबल एम.ए.(जैनविद्या व तुलनात्मक धर्मदर्शन; इतिहास), नेट, एम.फिल (जैन दर्शन)
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
E-Mail : ptstjaipur@yahoo.com **फैक्स :** (0141) 2704127